REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2019

कर्णाटकालीन शैक्षिक विकासः एक अध्ययन

डॉ. राकेश कुमार
बी० ए०, बी० लीस०, एम० ए०
पी–एच० डी०
पुस्तकालय अध्यक्ष, +2 हाई स्कूल, खिरहर.

भूमिकाः–

मिथिला प्राचीन भारत में एक राज्य था। माना जाता है कि यह वर्तमान उत्तरी बिहार और नेपाल की तराई का इलाका है जिसे मिथिला के नाम से जाना जाता था। मिथिला की लोकश्रुति कई सदियों से चली आ रही है जो अपनी बौद्धिक परम्परा के लिये भारत और भारत के बाहर जानी जाती रही है। इस क्षेत्र की प्रमुख भाषा मैथिली है। हिन्दू धार्मिक ग्रंथों में सबसे पहले इसका संकेत शतपथ ब्राह्मण में तथा स्पष्ट उल्लेख वाल्मीकीय रामायण में मिलता है। मिथिला का उल्लेख महाभारत रामायण पुराण तथा जैन एवं बौद्ध ग्रन्थों में हुआ है। तन्त्रा साहित्य अत्यन्त विशाल है। प्राचीन समय के दुर्वासा अगस्त्य विश्वामित्र परशुराम वृहस्पति वशिष्ठ नंदिकेश्वर दत्तात्रेय आदि ऋषियों न तन्त्रा के अनेकों ग्रन्थों का प्रणयन किया उनका विवरण देना यहाँ अनावश्यक है। ऐतिहासिक युग में शंकराचार्य के परम गुरू गौडपादाचार्य का नाम उल्लेखनीय है। उनके द्वारा रचित सुभगोदय स्तुति एवं श्रीविद्यारत्न सूत्र प्रसिद्ध है। मध्ययुग में तांत्रिक साधना एवं साहित्य रचना में जितने विद्वानों का प्रवेश हुआ था उनमें से कुछ विशिष्ट आचार्यो का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है– लक्ष्मणदेशिकः ये शादातिलक ताराप्रदीप आदि ग्रंथों के रचयिता थे। इनके विषय में यह परिचय मिलता है कि ये उत्पल के शिष्य थे। आदि शंकराचार्यः वेदांगमार्ग के संस्थापक सुप्रसिद्ध भगवान शंकराचार्य वैदिक संप्रदाय के अनुरूप तांत्रिक संप्रदाय के भी उपदेशक थे।

ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शती के प्रथम चरण के अन्त क्रमशः कर्णाट क्षत्रियों एवं ओइनवारों का स्वतंत्र एवं अर्द्ध–स्वतन्त्र राज्य पर रहा। संस्कृत साहित्य के संवर्द्धन एवं अध्ययन–अध्यापन के हेतु इस मध्यकालीन युग को मिथिला का स्वर्ण–युग कहना अनुचित न होगा। इस काल में अनेकानेक ग्रंथों, भाष्यों एवं ग्रन्थ–सारों का सृजन साहित्य एवं विज्ञान के सभी अंगों पर हुआ। इसी काल में अनेक विषयों की पुस्तकों का संकलन भी किया गया। स्मृतियों का संकलन भी किया गया। स्मृतियों के अध्ययन की दिशा में लोगों की प्रवृत्ति बढ़ी। उसके विस्तार एवं विकास के हेतु विद्वानों के संकाश एवं सहयोग से सराहनीय कार्य हुआ, तथा जनता के बीच उसके सम्यक् प्रचार के लिए समुचित अवकाश शासन के संपोषण से प्राप्त हुआ। चंडेश्वर परिवार तथा हरिनाथ उपाध्याय, श्री दत्तोपाध्याय, भव शर्मन, इन्दुपति एवं उसके मेघावी शिष्य लक्ष्मोपति आदि मनीषियों के नाम उल्लेखनीय है ं जिनकी लेखनियों के द्वारा स्मार्त–विचार–धारा का प्रसार एवं प्रचार सभी स्तर के जनसमुदाय तक हो सका। भानुदत्त मिश्र ने श्रृंगार एवं वाचन तथा लेखन कलाओं पर जनप्रिय निगूढ़ ग्रंथों का निर्माण किया। विद्वान ज्योतिरीश्वर ने श्रृंगार–पंथ 'पञ्चशायक' तथा 'रंगशेखर' का प्रणयन किया और रत्नेश्वर ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक साहित्य–सिद्धांत ग्रन्थ पर ललित भाष्य लिखा। साहित्यिक कृत्यों में भवदत्त का 'नैषध–चरितम्' पर लिखा भाष्य अद्यावधि बड़े चाव से पढ़ा जाता हैं। पृथ्वीधर आचार्यो ने 'मृच्छकटिक' नाटक

पर सुन्दर भाष्य प्रस्तुत किया, तथा श्रीकर आचार्य ने संस्कृत के सुप्रसिद्ध कोष–ग्रंथ 'अमर–कोष' पर टीका लिखी। ज्योतिरीश्वर ने 'वर्णरत्नाकर' प्राचीन मैथिली में प्रस्तुत किया था। पद्रनाभ दत्त ने 'सुपद्य' तथा उसके पूरक अन्य अनेक नव व्याकरण–ग्रंथों का निर्माण किया। पश्चाद्वर्तीकाल में न्याय विषयक ग्रंथों के अवकलन, संकलन, सम्पादन एवं प्रणयन के क्षेत्र में गंगेश उपाध्याय का नाम स्मरणीय एवं उल्लेखनीय हैं।

ओइनवार राज्य में मिथिला में शिक्षा

चौदहवीं शती के तृतीय चरण के प्रथम दशक के लगभग मध्य से ओइनवारों का राज्य आरंभ हुआ। इस काल के प्रख्यात विद्वानों में चार के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे हैं–

जगधर, विद्यापति, शंकर मिश्र तथा वाचस्पति मिश्र। पं० वाचस्पति मिश्र को 'अभिनव वाचस्पति' भी कहा जाता था। इस नाम के और दो विद्वानों का पता भी इतिहास देता है। किन्तु वे दोनों ही ओइनवार–युग के विद्वान नहीं थे। उनमें से एक नवमी शताब्दी के अंतिम चरण में विद्यमान थे तथा वेदान्त दर्शन नहीं थे। उनमें से एक नवमी शताब्दी के अंतिम चरण में विद्यमान थे तथा वेदान्त दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने शंकरचार्य (जन्म वर्ष 778 ई0) के 'शारीरिक भाष्य' के उपर 'भामति' नामक टीका लिखी थी। यह 'शारीरिक भाष्य' वेदान्त दर्शन के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ब्रह्मसूत्र' को विस्तृत व्याख्या है। 'न्यास शुचि निबन्ध' के रचयिता भी ही वाचस्पति मिश्र थे। दूसरे वाचस्पति परवर्ती विद्वान् थे। वे वारेन्द्र ब्राह्मण कुलदेव थे तथा उनका नाम चन्द्रशेखर वाचस्पति था। ओइनवार–काल के विद्वान् वाचस्पति मिश्र 'विवाद चिन्तामणि' आदि ग्रंथों के प्रणेता थे। ओइनवार राजकुल के स्थापना काल में महामनीषि जगधर विद्यमान थे।

कविवर विद्यापति का काल चौदहवीं और पंद्रहवी शती (1340–1448 ई0) बताया जाता है। ओइनवर कुल के सातवें नरेश स्वतन्त्राता के उपासक राजा शिवसिंह देव के काल में इनकी प्रसिद्धि अत्यधिक हुई। ये बहुमुखी विद्वान थे। इनकी कविताएँ आज भी मिथिला के घर–घर में बड़े चाव से गायी और बढ़ी जाती हैं। ये वैष्णव होते हुए भी के अर्चक एवं उपासक थे, तथा 'पदावलि' अति प्रसिद्ध है। 'पदावलि' का प्रभाव साम्प्रतिक वैष्णव एवं भागवत धर्म के परवर्ती प्रचारक बंगाल के परम प्रसिद्ध कृष्णा–भक्त चैतन्य महाप्रभु पर पड़ा, और उनके द्वारा कवि के भक्ति एवं भावपूर्ण पदों का प्रचार बंगाल में भी घर–घर उसी प्रकार हुआ जैसा 'बाइबिल' का अंग्रेजों के निकलने में। विद्यापति ने स्मृति, नीति, पूजा तथा साहित्य सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों की रचना उपर्युक्त पुस्तको के अतिरिक्त की। 'विभाग–सार', 'गंगा वाक्यावलि' तथा 'दान वाक्यावलि कवि के स्मृति–विषयक ग्रन्थ है; 'भू–परीक्षा' एवं 'पुरूष' नीति सम्बन्धीः 'शैव–सर्वस्व–सार' तथा 'दुर्गा–भक्ति–तरंगिणी' पूजा–विषयक, और 'लिखना–वलि' साहित्य के अनेक सम्मान्य ग्रंन्थ हैं। विद्यापति की कविताओं में श्रृंगाार एवं भक्ति रस से ओतप्रोत हैं तथा वार्द्धक्य की आध्यात्म जनक निगूढ़ भावों से परिपूर्ण है।

मीमांसा–दर्शन के क्षेत्रा में भी मिथिला ने इस युग में अभूत–पूर्व प्रगति का प्रदर्शन किया। उस काल उक्त दर्शन के अध्ययन के हेतु दो पद्धतियाँ प्रचलित थी। (1) भट्ट–पद्धति, तथा (2) प्रभाकर पद्धति। मिथिला के ओइनवार वंशीय नवम् नरेश राजा पद्धति, की रानी और उत्तराधिकारी विश्वास देवी के शासन–काल में मिथिला में विद्वानों का एक सम्मेलन बुलवाया गया था, जिसमें लगभग 1400 केवल मीमांसक पंडित आमन्त्रित किये गये थे। आगे चलकर उपर्युक्त दोनो पद्धतियों में प्रभाकर–पद्धति जनप्रिय हुई, और उसकी ओर देश के भिन्न–भिन्न भागों के विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ।

बारहवीं और पंद्रहवी शताब्दियों के बीच महान तार्किक विद्वान गंगेश उपाध्याय, वर्द्धमान, पक्षधर एवं अन्यान्य विद्वानों के द्वारा दर्शन के अध्ययन–अध्यापन में नये ढंग से प्रगति आयी, और गौतम द्वारा चलित प्राचीन दर्शन का विकास हुआ। मगध के नालन्द–विश्वविद्यालय के समान ही मिथिला की प्रसिद्धि सम्पूर्ण भारत के बीच हुई, और देश के भिन्न भागों में न्यायशास्त्र को उच्च शिक्षा के हेतु विद्यार्थीगण आकृष्ट होकर वहाँ आने लगे। उस काल काशी आदि विद्यापीठों के समान ही मिथिला संस्कृत–अध्ययन का केन्द्र बन गयी थी। उस युग में वहां संस्कृत विद्या के साथ ही क्षेत्रीय भाषा मैथिली का भी विकास स्थानीय विद्वानों के प्रयत्न से आरंभ हुआ। इन कारणों से विद्वान मिथिला के उस साहित्यिक विकास के काल के मिथिला के 'स्वर्ण–युग' बताते हैं–

उच्च शिक्षा

उच्च शिक्षा–प्राप्ति के प्रमाण–पत्र पाने के हेतु वहां मिथिला के विश्वविद्यालय में प्रत्याशी शिक्षार्थियों को अति कठिन परीक्षा में सम्मिलित होना पड़ता था, जिसे– 'श्लोका–परीक्षा' की संज्ञा प्राप्त थी। शिक्षार्थियों के समक्ष परीक्षक पंडित एक शलाका का प्रवेश सम्बद्ध विषय के हस्तलिखित ग्रन्थ में करता था और जहाँ वह श्लोका पुस्तक के जिस पृष्ट पर रूकती थी, उस पृष्ठ से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर परीक्षार्थी को देना पड़ता था। परीक्षार्थी अपनी पुस्तकों का अवलोकन भी उस काल कर सकता था। प्रत्याशियों के विशाल ज्ञान–भंडार की माप उक्त प्रकार की परीक्षा–पद्धति से होती थी। उन्हें बिना तैयारी किये अपने अधीन विषय के ग्रन्थ के किसी अंश से किए गये अपने प्रश्नों के उत्तर देने के हेतु प्रस्तुत रहना पड़ता था। उसमें सम्यक सफलता प्राप्त होने पर उनको उस विषय में परीक्षोतीर्ण होने का प्रमाण–पत्र प्राप्त होता था। नालन्दा विश्वविद्यालय में भी उच्च शिक्षा के प्रत्याशियों को द्वारपाल पंडितों के सामने कठिन परीक्षा सम्मिलित होकर उत्तीर्ण होना पड़ता था। तब उनका प्रवेश विश्वविद्यालय में हो पाता था। मिथिला में लगभग उसी प्रकार की कठिन परीक्षा की पद्धति परवर्ती काल में भी प्रचलित थी। 'सदयन्त्र' परीक्षा और भी कठिन थी। उस परीक्षा में सम्मिलित होने वाले विद्वान् परीक्षार्थियों को परिक्षाओं के साथ–साथ ज्ञान–वृद्ध जन समुदाय के समक्ष परीक्षा देनी पड़ती थी। ऐसे परीक्षार्थियों को किसी भी विषय के किसी भी अंग पर प्रश्न पूछे जा सकते थे। ऐसी परीक्षा के द्वारा परीक्षार्थी के बहुमुखी की जाँच होती थी। उसमें उतीर्ण होने पर 'सदयन्त्र' का प्रमाण–पत्रा दिया जाता था। विद्यापीठों के आचार्यो की उपाधियाँ, यथा–उपाश्याय, महोपाध्याय तथा महामहोपाध्याय भी क्रमशः उनकी अनुक्रमिक प्रवीता एवं वरीयता के आधार पर दी जाती थी।

मिथिला में अनेक ग्रामों का नामकरण वहाँ पर प्रचलित वेद, वेदांग एवं शास्त्राों के विशेष अध्ययन–अध्यापन–कार्य के नाम हुआ प्रतीत होता है। सम्भवतः मिथिला के मुजफ्फरपुर जिले के रीगा, अथरी, यजुआरा में क्रमशः ऋग्वेद, अर्थवेद एवं यजुर्वेद के अध्ययन–अध्यापन का केन्द्र था। उसी प्रकार भट्टसिरी अथवा भट्टपुर में भट्ट–पद्धति की मीमांसा का तथा मउ वेहटा में यजुर्वेद की माध्यान्दिनी शाखा का केन्द्र था, आदि।

मिथिला के विद्यापीठों में बाहर के विद्यार्थीगण विद्याध्ययन कर दक्षता प्राप्त करते एवं वहाँ से प्रमाण–पत्र प्राप्त कर सकते थे, परन्तु उन्हें किसी हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रतिलिपि अथवा आचार्यो की बतायी हुई लिखित टिप्पणियों को अपने साथ घर ले जाने का अधिकार प्राप्त नहीं था। इन कारणों से मिथिला की विद्वता का प्रसार मिथिला से बाहर बहुत कम हो पाया।

वह विशेषता अपनी सीमाओं के अंदर सीमित रहने के कारण संकुचित हो गयी। मिथिला की इस नीति के कारण पड़ोस के अंचलों में क्षोभ एवं स्पर्द्धा का होना स्वाभाविक था। फलतः बंगाल के नदियों में मिथिला के विश्वविद्यालय अथवा विद्यापीठ के टक्कर के एक नये विश्वविद्यालय अथवा विद्यापीठ की स्थापना हुई। खिष्टाबद्ध 1198 ई0 और 1757 ई0 के बीच नदिया की ख्याति सारे भारतवर्ष में आर्य–शिक्षा के केन्द्र के रूप में बनी रही। वर्ष प्रथम रघुनाथ शिरोमणि ने न्याय–दर्शन का अध्यापन नदिया में प्रारंभ कर उस विषय के मिथिला के एकाधिकार को समाप्त कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि मिथिला और बंगाल के बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध अति प्राचीनकाल से चला आता था। मिथिला के स्मार्त ग्रन्थों के लेखकों का प्रभाव बंगाल के स्मृति–अध्ययन पर पर्याप्त रूप से पड़ा। नदिया में स्मृति अध्ययन की शाखा भी 16 वीं शताब्दी में खोली गयी, जिसका उद्घाटन तत्कालीन विद्वान् रघुनन्दन ने किया था। विद्यापति के गीतों का प्रभाव बंगाल के साहित्यिक जीवन पर तो अद्यावधि स्पष्ट है। उसके भक्तिपूर्ण दों की छाप बंगाल के भक्त कवियों की कविताओं पर प्रत्यक्ष एवं निर्विवाद रूप से दृष्टिगोचर होती है। स्मृति के क्षेत्र में मे चण्डेश्वर, भवशर्मन, हरिनाथोपाध्याय, पद्यानाभदत, इन्द्रपति तथा अन्याय लेखकों के प्रभाव से बंगाल के स्मृतिलेखक गण प्रभावित हुए। इस कारण दोनों के बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध शताब्दियों से बना हुआ था। मैथिलों और बंगालियों की रहन–सहन, चाल–चलन, विधि व्यवहार आदि में बहुत अंशों तक समानता चिरकाल के सांस्कृतिक सम्पर्क के कारण हो पायी जाती है।

बंगाल की भाँति नेपाल से भी सांस्कृतिक सम्बन्ध मिथिला का प्राचीन है। मुसलमानी आक्रमण के काल में मिथिला के अनेक विद्वान परिवार अपनी एवं अपने प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की रक्षा

के विचार से तथा जीविका निर्वाह के हेतु भी नेपाल में जा बसे थे। कर्णाट क्षत्रियों की नेपाल विजय से यह सम्पर्क पूर्व से स्थापित था ही। नेपाल में प्राप्य अनेक हस्तलिखित ग्रंथ तिरहुत के लिपिकों के कृत्य हैं, जो वहां जाकर बस गये थे। नेपाल के अनेक लिपिकारों ने तिरहुत में निवास कर प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतिलिपीयाँ उतारी थी। इससे दोनों देशों के बीच उत्तरोत्तर बढ़ते हुए सांस्कृतिक सम्पर्क का पता चलता है। उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि कर्णाट एवं ओइनवार–काल में मिथिला में बहुमुखी का प्रचार व्यापक था। संस्कृत उसका माध्यम था। मिथिला की शिक्षा एवं उसकी पद्धति का प्रचुर प्रभाव पड़ोस के देशों की शिक्षा के क्षेत्र में पड़ा था, इसमे सन्देह नहीं हैं।

निष्कर्षः

कर्णाट एवं ओइनवार कुल के शासन–काल में विद्या के साथ–साथ कला की समुचित उन्नति हुई। इस युग में स्थापत्य, मूर्ति–निर्माण, चित्र–चित्रण एवं संगीत का विकास समाज में काफी हुआ। शासन के प्रश्रय में ये कलाएँ पर्याप्त रूप से विकसित हुई तथा फूली और फलीं। संगीत में अभिवृद्धि हुआ। इस समय कला का पोषण राज्य की ओर से विशेष रूप से होता था। कर्णाट के संगीत में उसने कई लोक–प्रिय रागों को विकसित किया, तथा संगीत पर ग्रन्थों का भी निर्माण किया। भारतीय नाट्य शास्त्र की रचना भी इसी युग में हुआ। उसने लगभग 160 रागों का समावेश अपने ग्रन्थ में किया, जिनमें ऐसे भी अनेक राग हैं जो भरत एवं अभिनव गुप्त द्वारा प्रस्तुत पद्धति में नहीं पाये जाते हैं। नान्यदेव अति उच्चकोटि का संगीतज्ञ तथा उस शास्त्र का मर्मज्ञ लेखक था जो अधिकार–पूर्ण ढंग से उस विषय पर अपना मत प्रकट कर सकता था। सारंगदेव ने अपने ग्रन्थ 'संगीत रत्नाकर' (पृ0 1–12) में उसके नाम को बार–बार संगीत–शास्त्र के अभिज्ञ लेखक के रूप में अंकित किया है। राजा नान्यदेव द्वारा निर्देशित संगत पथ का अनुसरण राजा हरिसिंह देव, कविशेखराचार्य, ज्योतिरीश्वर, सिंह भूपाल जगधर, जगज्योतिमल्ल, 'रागतरंगिणी' के रचयिता लोचन आदि प्रसिद्ध गायनाचार्यो ने 12 वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताबदी तक अबाध गति से किया, तथा अपने स्थान पर आज भी वह पद्धति सुस्थिर एवं अचल बनी हुई है। इसी प्रकार के संगत के विकास की देन मिथिला को आगे चलकर विद्यापति, उमापति दास तथा गोविन्द दास की गेय पदावलियाँ में मिली है जिससे तत्कालीन क्षेत्रीय भाषा प्राचीन मैथिली को प्रस्फुटित होने का अवसर मिला।

संदर्भ ग्रंथ–सूची

1. जरनल ऑफ दि एशिएटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, 1925 सीरीज, पृ0 414।
2. जरनल ऑफ दि एशिएटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, 414।
3. आर० के० मुखर्जी : एन्शिएण्ट इण्डियन एडुकेशन, 597; जरनल ऑफ दि एशिएटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल 1975, न्यू सिरीज, नं0 400, 431–32।
4. डॉ० उपेन्द्र ठाकुरः हिस्ट्री ऑफ मिथिला, पृ0 376, पाद टिप्पणी।
5. आर० के० मुखर्जीः इण्डियन एन्शिएण्ट एडुकेशन, 596; जरनल ऑफ दि एशिएटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, 1915,, न्यू सीरिज, पृ0 431।
6. ग्रियर्सनः इण्ट्रोडक्शन ऑफ मैथिल लैंग्वेज, विद्यापति के सम्बन्ध में।
7. डी० सी० सेनः हिस्ट्री ऑफ बंगाली लैंग्वेज ऐंड लिटरेचर, 1, 149; जे० के० मिश्रः हिस्ट्री ऑफ मैथिली लैग्वेज, 1,130।
8. प्रभाकर मीमांस, डॉ० गंगानाथ झा कृत, पृ0 10 : डॉ० गंगानाथ झा कौमेमोरेशन वॉल्यूम, 242–43।
9. आर० के० मुखर्जीः एन्शिएण्ट इण्डियन एडुकेशन, 497।
10. जरनल ऑफ दि एशिएटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, न्यू सीरीज, पृ0 432।
11. आर० के० मुखर्जीः एन्शिएण्ट इण्डियन एडुकेशन, पृ0 598।
12. विद्याभूषणः हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लौजिक, 522; गोपीनाथ कविराजः सारस्वती भवन स्टैडीज, 4–62।